Chap-1

प्रथम अध्याय :

परिवार
और
विघटन की स्थितियाँ

(1) परिवार - अर्थ और परिभाषा
पाश्चात्य अवधारणा
भारतीय अवधारणा

(2) परिवार : विविध संदर्भ - कर्ता, स्त्रियो की स्थिति, पारस्परिक प्रेम, उत्तरदायित्व की भावना, अधिकार और कर्तव्य, माता-पिता, पति-पत्नी, बच्चे तथा अन्य रिश्तेदार, अनुशासन और मर्यादा, पारिवारिक गौरव, पारिवारक आचार-संहिता और रीति-नीति, अतिथि सत्कार।

(3) परम्परागत भारतीय परिवार की विशेषताएँ।

(4) परिवार के कार्य - जैविक कार्य, वंशानुक्रम से जुडे कार्य, अनुशासनात्मक एवं शिष्टाचारपूर्ण स्थायी यौन तुष्टि, प्रजनन और संतान का पालन-पोषण, संवेगात्मक संतुष्टि, शारीरिक कार्य, राजनीतिक कार्य, धार्मिक कार्य, आर्थिक कार्य, शैक्षणिक कार्य, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य, मनोरंजन संबंधी कार्य।

(5) परिवार के विभिन्न संयोजन एवं विघटनकारी घटक

(6) संयोजन का मुख्य आधार आर्थिक सौरस्य एवं नैतिकता

(7) परिवर्तनशील स्थिति में पारिवारिक बदलाव

(1) परिवार : अर्थ और परिभाषा :

पाश्चात्य अवधारणा
भारतीय अवधारणा

परिवार एक ऐसी शक्ति है, जो व्यक्ति और उसके परिवेश तथा समाज के मध्य की कडी है। जहाँ परिवेश व्यक्ति और परिवार तथा परिवार व्यक्ति और परिवेश से दूसरे स्तर पर जुड़ा रहता है, उसका स्वयं से जुडा होना व्यक्ति की पहली शर्त है, क्योंकि वह अपने से अलग नहीं होता। व्यक्ति परिवार का अंग है, और उसका दायित्व - उत्तर दायित्व परिवार के संदर्भ में ही देखा जा सकता है । इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति और परिवार एक-दूसरे से जुड़े रहें। परिवार समाज की प्राथमिक इकाई होने के कारण जन्म से ही व्यक्ति के जीवन के साथ संयुक्त है। और जहाँ परिवार में रहकर व्यक्ति का लालन-पालन होता है, उसका विकास होता है, वहीं उसी परिवार के कारण कभी उसे अनेकानेक कठिनाईयों का सामना भी करना पड़ता है। इसी प्रकार, कई बार व्यक्तिगत मानसिक असंतुलन परिवार के लिए कठिनाईयों का कारण बनता है। कभी यह भी देखा जाता है कि सामयिक परिस्थितियाँ और परिवेश परिवार और व्यक्ति के जीवन को कष्टमय बना देते है। यह एक जटिल दुष्चक्र है, और यही जीवन है। इन्ही उलझनों में उलझा मनुष्य जीवन संघर्षमय होता जा रहा है। मूल्यों का विघटन, परिवारों का विभाजन, सम्बन्धों में पडी दरारें, नैतिक मापदण्डो की समाप्ति, पीढियों का अंतराल, युवा पीढी की परम्पराओं मे अनास्था,

.. .. 2 ....

पुरातन पीढी का मूल्यों के प्रति मोह, जनसंख्या में वृद्धि, नये विकसित बढते मूल्य, आवास की समस्या, आर्थिक दबाव, राजनीतिक विसंगतियाँ, उच्चशिक्षा और पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से जन्मी नयी मानसिकता, औद्योगिकीकरण, यांत्रिक जीवन और महानगरीय अजनबीपन आदि के यथार्थ आज की विघटनकारी स्थितियों में विशेष रूप से देखे जा सकते हैं। साठ के बाद की कहानियों में पारिवारिक सम्बन्धों में बदलाव की परिस्थितियों को प्रमुख स्वर दिया है। परिवेश और परिवार की घुटन, अंतराल, विभाजन सब से अधिक साठोत्तरी कहानियों में पाया गया है।

मनुष्य जीवन में और विशेष रूप से समकालीन जटिल स्थितियों वाले मनुष्य जीवन में सम्बन्धों के विघटन का कोई एक कारण नहीं हो सकता है। परिवार के कार्य में परिवर्तन जन्य, वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक तनाव जन्य विघटन स्थितियाँ ज्यादातर होती हैं। आज पारिवारिक सम्बन्धों में निकटता कम और दूरियाँ ज्यादा बढ़ गई हैं। इस विषय पर विस्तार से चर्चा करने के पूर्व परिवार, उसके कार्य, उत्तरदायित्व और उनमें विघटन के अनेक कारणों की चर्चा करना समीचीन प्रतीत होता है।

परिवार की एक निश्चित परिभाषा देना कठिन है। विभिन्न भारतीय समाज शास्त्रियों ने इसकी अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। डॉ. डी एन. मजुमदार के अनुसार - "परिवार व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो एक ही घर में रहते हैं और रक्त एकता की भावना, समान स्वार्थ, सहवास और परम्परा कर्तव्यों के आधार पर एक-दूसरे से

सम्बन्धित हैं। सुरक्षा तथा आक्रमण दोनों ही अवसरों के लिए यह एक संगठित इकाई है।"[1] परिवार में व्यक्ति - व्यक्ति से जुड़ा होता है। डॉ. गणेशदास के अनुसार - "व्यक्ति और समाज के बीच की महत्वपूर्ण इकाई परिवार है। परिवार एक ओर जहाँ व्यक्ति और समाज के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों को बनाये रखता है, वहीं नर-नारी के सम्बन्धों को भी व्यवस्था देता है। परिवार नर-नारी के श्रम-विभाजन का आधार है।"[2] हरिदत्त वेदालंकार ने परिवार के सम्बन्ध में कहा है कि - "परिवार मानव-जाति में आत्म-रक्षण, वंशवर्धन और जातीय जीवन में सातत्य को बनाये रखने का प्रधान साधन है। मनुष्य मरण धर्मी है, किन्तु मानव जाति अमर है। व्यक्ति उत्पन्न होते हैं, बचपन, यौवन और बुढ़ापे की अवस्था भोगकर समाप्त हो जाती हैं। व्यक्ति भले ही मर जाये पर परिवार और विवाह द्वारा मानव जाति अमर हो गई है।"[3] डॉ. श्रीमती सुनीता श्रीमाल के अनुसार - "व्यक्ति का समाजीकरण करने में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बच्चों की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति, पालन-पोषण परिवार में ही सम्भव है। बच्चे की सांस्कृतिक शिक्षा तथा एक-दूसरे के प्रति सहयोग की भावना जितने सहज और अनौपचारिक रूप से परिवार में संभव है, उतनी किसी दूसरे मानव समूह में सम्भव नहीं। समाज के अस्तित्व की रक्षा करने का पूर्ण दायित्व भी परिवार का ही है।"[4] श्री एस. आर. त्रिपाठी ने 'परिवार' संस्था के सम्बन्ध में अपना मत प्रगट करते हुए लिखा है - "सामान्य रूप से एक भारतीय परिवार में पति-पत्नी, विवाहित पुत्र तथा उनकी पत्नियाँ आदि रहते हैं और एक साथ भोजन करते हैं और एक ही देवता की उपासना करते हैं। घर के समस्त सदस्य अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुसार कार्य करते हैं। घर का बडा बूढा परिवार का

सर्वोच्च अधिकारी होता है। वह परिवार के समस्त सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और आवश्यकतानुसार सब सदस्यों का प्रतिनिधित्व करता है। समस्त सदस्य सभी की अधीनता और संरक्षण में कार्य करते हैं।"[5] श्यामाचरण दुबे के अनुसार - "मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्नत कहें या अवनत किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यतः पाया जाता है।"[6] "पारिभाषित शब्दावली में परिवार व्यक्तियों का समूह है, जो परस्पर वैवाहिक बंधन, रक्त सम्बन्ध या अनुकूलता द्वारा एक समुदाय में आबद्ध हैं। जो समाज में पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन के रूप में मान्य हैं, जो परस्पर सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हैं। जो सामान्य सस्कृति का विकास करते हैं, उसके भागीदार बनते हैं और उसे कायम रखते हैं।"[7] परिवार आज एक मान्य सामाजिक इकाई है और किसी न किसी रूप में यह सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरों पर पायी जाती है।

'परिवार' सम्बन्धी उपर्युक्त भारतीय समाजशास्त्रियों के अनुसार समस्त परिभाषाओं का निष्कर्ष यही है कि - परिवार एक ही वंश से ही चलता है। संतान रहित या संतान सहित, पति-पत्नी से निर्मित एक संस्था है, जिसमें पारस्परिक हितों और भावनाओं की रक्षा की जाती है। मानव जाति के इतिहास में प्रथम संस्था परिवार ही है। प्रत्येक समय में इसका महत्त्व रहा है। परिवार मनुष्य के संपूर्ण जीवन को प्रभावित करता है। प्रत्येक परिवार की अपनी परम्परा के अनुसार विवाह अनिवार्य है। परिवार का अपने सदस्यों पर पूर्ण प्रभाव रहता है। बाल्यकाल से ही बालक के

व्यक्तित्व को प्रभावित कर व्यक्तित्व निर्मित करने का कार्य करता है। परिवार ही बालक को सामाजिक दायित्व का पाठ सिखाता है।

मैक आइवर ने जोरदार शब्दों में कहा है - "संकट और संघर्ष में व्यक्ति कार्य कर सकता है, अपने देश के लिए जूझ सकता है, मर सकता है, परन्तु अपने परिवार के लिए अथक परिश्रम करता है। बालक के समाजीकरण का सबसे बडा कारण परिवार है।"[8]

परिवार में सभी सदस्य सहयोगपूर्वक रहते हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो परिवार को संगठित नहीं रख पाते और उत्तरदायित्वों का, आर्थिक सामर्थ्य और सदस्यों की शक्ति का विभाजन अवश्यंभावी हो जाता है।

परिवार को पाश्चात्य विद्वानों ने भी परिभाषित किया है। उनमें से कुछ विचारों को यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

ऑगबर्न और निमकॉक के अनुसार - "परिवार सन्तानयुक्त या सन्तानविहीन पति-पत्नी के स्थायी समूह का नाम है।"[9]

डेविस किंग्सले के अनुसार - "परिवार ऐसे व्यक्तियो का समूह है, जो परस्पर रक्त सम्बन्ध में सम्बन्धित हैं।"[10]

सी. सी. हैरिस के अनुसार - " 'परिवार' किनशिप से भिन्न शब्द है, जो कि आज के समाजों द्वारा प्रयुक्त है, जो औद्योगीकरण द्वारा अधिक विकसित हो चुके हैं। सभी समाज सांस्कृतिक उन्नयन के संक्रमण के लिए परिवार पर ही अधिकतम भरोसा रखते हैं। परिवार एक अनिवार्य आवश्यकता है। परिवार नये पैदा हुए बालक के समाजीकरण का पोषण करता है। (Nurturent Socialisation of the new born) बालक के स्वाभाविक विकास में परिवार एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।"[11]

प्रोफेसर व. केन्ले और म. कोवालजोन ने कहा कि - "परिवार एक ऐसी संस्था है, जिसे हम प्रत्येक समाज में पाते हैं और जो पति-पत्नी के वैवाहिक सम्बन्धों पर आधारित है।... परिवार ऐसे लोगों का समूह है, जिन्हें वैवाहिक सम्बन्ध (पति-पत्नी तथा रक्त सम्बन्ध और बच्चे, भाई और बहन) एकताबद्ध करते हैं ..... परिवार की संस्था की उत्पत्ति और उसको कायम रखने का मुख्य कारण मानव जाति के प्रजनन तथा बच्चों की आवश्यकता है।.... परिवार समाज में व्याप्त सामाजिक सम्बन्धों का प्रतीक है। परिवार के भीतर के सम्बन्धों पर युक्त समाज के आर्थिक, कानूनी, नैतिक तथा धार्मिक सम्बन्धों की छाप होती है , और यह छाप इतनी गहरी होती है कि वास्तव में हर सामाजिक संरचना में एक प्रकार का परिवार होता है, जो केवल उसकी विशेषता होती है।"[12]

बट्रेण्ड रसेल ने परिवार की परिकल्पना के सम्बन्ध मे अपनी संभावना को व्यक्त करते हुए कहा है कि - "परिवार मानव-पूर्ति संस्था है, जिसे जीवशास्त्र की

............7............

दृष्टि से केवल इसीलिए उचित कहा जा सकता है कि गर्भावस्था बच्चे को दूध पीते रहने तक पिता का सहयोग रहे तो उसके जीवित रहने में सहायता मिलती है।"[13]

वेस्टरमार्क ने सही लिखा है कि - "विवाह का मूल परिवार में है, न कि परिवार का मूल विवाह में।"[14]

मेक आईवर और पेज के अनुसार - "परिवार यौन सम्बन्धों पर आधारित, पर्याप्त सीमित एवं सन्तानों के पालन-पोषण-संरक्षण और विकास में क्षमतावान एवं सहिष्णु समूह का नाम है।"[15]

'परिवार' के अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'फैमिली' की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा के फेमूलस शब्द से हुई है। रोम में फेमूलस नाम का एक व्यक्ति पारिवारिक गुलाम था। फैमूलस का अर्थ है सेवक अथवा नौकर। 'फेमिलियो' शब्द का अर्थ मूलतः एक गृहस्थ से सम्बन्धित गुलामों के समूह के अर्थ में किया जाता था। अब गृहस्थी में रहनेवाले सभी नियमित सदस्यों के अर्थ में प्रचलित है। "फैमिली" के इसी अर्थ से प्रेरित होकर संभवतः जी.के. अग्रवाल ने परिवार की परिभाषा इस प्रकार की है - "वस्तुतः परिवार उन व्यक्तियों का समूह है जो सेवा-भाव से एक-दूसरे के साथ रहते हैं।"[16]

उपर्युक्त मतों से यह स्पष्ट होता है कि परिवार की परिकल्पना के पीछे

प्राकृतिक, वैयक्तिक और सामाजिक कारण प्रमुख रहे हैं। पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार परिवार कामवासना की पूर्ति का साधन माना जाता है। पाश्चात्य जीवन-संस्कृति का मूल, यौन-भोग और भौतिक सुखों की प्राप्ति है। इससे विपरीत भारतीय परिवार केवल काम-वासना की तृप्ति का साधन मात्र नहीं हैं। धर्म, अर्थ, मोक्ष की प्राप्ति भारतीय मान्यतानुसार परिवार का प्रमुख उद्देश्य है। भारतीय परिवार की नींव 'भोग' पर नहीं 'त्याग' पर ही रखी गई है। ' धर्म ' भारतीय संस्कृति का जीवन है और इन परम्परागत मूल्यों में जब व्यवधान उपस्थित होते है तो सहज रूप से उनमें विघटन की स्थितियाँ जन्म लेती हैं। ऐसी ही स्थितियों की अभिव्यक्ति हमारे कहानीकार साहित्य और समाज से जुड़े होने के कारण अपनी कहानियों में करते रहे हैं।

(2) परिवार के प्रकार :

कर्ता :

प्रत्येक व्यक्ति का समाज और परिवार में कोई ना कोई स्थान जरूर होता है। जैसे परिवार में सबसे बडे व्यक्ति को कर्ता का प्रमुख स्थान मिलता है, जो अपने परिवार के सभी सदस्यों का नियंत्रण करता है। परिवार के हिसाब से प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति दूसरे व्यक्ति से अलग-अलग होती है। व्यक्ति की भिन्नता के कारण उसके कार्य में भी भिन्नता स्वाभाविक है। घर का मुखिया पिता आर्थिक उपार्जन करता है तो उसका ही स्वामित्व होता है, सभी उसकी आज्ञा का पालन करते हैं तथा

अवहेलना करने पर दण्ड देने की व्यवस्था भी करता है। 'महाभारत' में कहा गया है – "कि धन परिवार का मूल है तो धन से ही कुल का व्यापार सम्पन्न होता है।"[17] व्यक्ति की अस्मिता की पहचान 'धन' ही बन गया है। आयुभेद के आधार पर ही व्यक्ति के स्थान का निर्धारण होता है। पुत्र को पिता के संरक्षण एवं अनुशासन में रहना पडता है, पुत्र पिता का आदर एवं सम्मान करता है। इस लिए परिवार में कर्ता का महत्व ज्यादा रहता है।

स्त्रियों की स्थिति :

भारतीय संस्कृति और समाज में नारी की स्थिति द्विविधाजनक रही है। एक ओर भारतीय परिवारों की यह विशेषता थी कि वहाँ स्त्रियों को सम्मान्नीय स्थान दिया जाता था। हिन्दू परिवारों में स्त्री को देवी के समान पूज्या बताकर उसकी महत्ता व्यक्त की गई है। 'मनुस्मृति' में यहाँ तक कहा गया कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। दूसरी ओर उस पर अनेक अंकुश लगाये जाते रहे, उसे माया, ठगनी और नरक का द्वार कहा गया। समाज में वह किसी की पत्नी, माँ, बेटी, बहन आदि रही लेकिन कुछ अपवादों को छोड़कर उसेक स्वतंत्र अस्तित्व को नकारा जाता रहा। क्रमशः समाज में उसके स्थान क़ा उत्थान हो रहा है। आज हर क्षेत्र में नारी पुरूषों की समकक्ष हो गई है, और समाज मे उन्हें समान स्थान प्राप्त है। वह अब कमाऊ बेटी, बहन, पत्नी, पुत्रवधु और माँ सभी रूपों में अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रही है। 'घर' और 'बाहर' के जीवन के बीच की खाई वह दूर कर रही है। पति अब उसका जीवन-सहचर है, केवल स्वामी नहीं। अब स्त्रियों को समाज,

परिवार और कानून की स्वीकृति मिलने लगी है। एक शिक्षित नारी ही परिवार के समस्त दायित्व का वहन कर सन्मानजनक स्थान की अधिकारिणी हो सकती है। नारी ने स्वयं अपने और अपने परिवार के सदस्यो की मानसिकता को भी बदला है। नारी को परिवार में सही स्थान पाने के लिए संघर्ष भी करना पडा है। स्त्री पुरूष की दासी नहीं, अब वह सही अर्थों में घर की साम्राज्ञी है। संपत्ति-संबंधी अधिकारों ने उसकी स्थिति को परिवार में और अधिक मजबूत बना दिया है। नौकरी और संतान के पालन-पोषण दोनों सुविधाओं को स्त्री ने परिवार में प्राप्त कर लिया है। स्त्रियाँ आज हर क्षेत्र में पहुँच गई हैं, जैसे कि प्रशासन, राजनीति, खेलकूद, पर्वतारोहण, अंतरिक्षयात्री आदि। शिक्षा ही वह साधन है जिससे स्त्रियों की स्थिति को परिवारों में उच्च स्थान प्राप्त हुआ है। आज वह सभी क्षेत्रों में उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं और स्त्रियों और पुरूषों के भेद को शिक्षा द्वारा मिटाना चाहती हैं। स्त्री-पुरूष को परिवार में समान अधिकार प्राप्त हैं। कभी 'टूटना' भी होता है तो कभी नये संबंधों की तलाश और कभी 'एक और जिन्दगी' की चाह भी होती है।

भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इन्दिरा गांधी के भव्य और कुशल व्यक्तित्व ने समस्त विश्व में यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री पुरूष से कहीं भी कम नहीं है। आज राजकारण में देखें तो ऐसी कई स्त्रियॉ हैं जो अपनी योग्यता से अपने पद को सुशोभित कर रही हैं। आज स्त्रियों की पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन आया है क्योंकि वह स्वयं नया मुक्त आकाश चाहती हैं। जिससे वह खुलकर साँस ले सकें और दुनिया के किसी भी देश की स्त्रियों की तुलना में उसका व्यक्तित्व का पलडा हलका न पड़े।

पारस्परिक प्रेम :

सामान्य रूप से एक परिवार में माता-पिता, पुत्र-पुत्री अथवा पति-पत्नी और उनकी सन्तानें होती हैं। परिवार के सभी सदस्य एक साथ रहते हैं और सभी में परस्पर प्रेम, एक-दूसरे को समझ पाने की भावना होती है। प्रत्येक सदस्य प्यार, मान, सम्मान, परिवार के हर व्यक्ति को दें, और सभी में एक दूसरे के प्रति सेवाभाव बना रहे, उसकी आवश्यकता होती है। व्यक्ति परिवार की मर्यादा मे ही अपना कर्तव्य निभाये और दूसरों की सुख-सुविधाओं को ध्यान में रखे, यह भावनात्मक आधार परिवार को अधिक मजबूत और आकर्षक बनाता है। परिवार के स्वरूप निर्माण में प्रेम, एकता, सद्भावना, आज्ञाकारिकता का बहुत महत्व होता है। ये सभी संस्कार परिवार की एकता को बढ़ाते हैं। अगर इनका अभाव हो तो परिवार टूट सकता है। आज की परिस्थिति में पारस्परिक प्रेम कम हो गया है और परिवार में कृत्रिमता ज्यादा आ गई है।

उत्तरदायित्व की भावना :

परिवार के सभी सदस्य परस्पर प्रेमभाव के साथ-साथ रहते हुए अपने दायित्व का निर्वाह करते हैं। माता-पिता हमेशा अपने संतानों को सुखी देखना चाहते हैं। चाहें उन्हें कितने ही कष्ट क्यों न झेलने पड़ें। व्यक्ति पारिवारिक भावना से अलग नहीं रह सकता। वह परिवार के प्रत्येक सदस्य के हित को ध्यान में रखता है और यहाँ तक कि परिवार के लिए वह अपने हित का बलिदान तक कर देता है। सभी छोटे बडे का आज्ञापालन एवं आदर-सत्कार करते हैं और व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को निभाता

.... 12 ....

है। अन्य संस्था या समिति के उत्तरदायित्व नियम के अनुसार होते हैं और व्यक्ति जब तक परिवार का सदस्य होता है, तब परिवार में प्रत्येक व्यक्ति बड़े से बडा त्याग करने को हमेशा तत्पर रहता है। तदनुरूप बड़े भी छोटों की सुख-सुविधाओं को ध्यान में रखते हैं।

अधिकार और कर्तव्य :

परिवार समाज का आधारभूत समुदाय है। प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि यथासम्भव यथोचित प्यार, मान-सम्मान और अधिकार उसे मिले उसके अभाव में व्यक्ति और परिवार का जीवन अवरूद्ध हो जाता है। सेवाभाव की परिवार में सर्वाधिक आवश्यकता रहती है। संतान का कर्तव्य है कि अपने पालनकर्ता माता-पिता की सेवा उनकी वृद्धावस्था में करें। कर्तव्य और अधिकार और उनके आदान-प्रदान की प्रथम पाठशाला परिवार ही तो है।

माता-पिता, पति-पत्नी, बच्चे तथा अन्य रिश्तेदार :

माता में ही ममता और आदर्श रूप उपलब्ध होता है। माँ क्षमा, त्याग, बलिदान का आदर्श रूप होती है, सन्तान की त्रुटियों को ममतावश क्षमा कर देती है। संतान के अपराधों पर वह ध्यान नहीं देती है। उसकी ममता कभी कम नहीं होती। प्रेम, सहानुभूति, त्याग के गुण सन्तान माता से ही सीखती है। संतान का संरक्षण पिता करता है और परिवार का समस्त दायित्व उसी पर रहता है।

पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम ही समाज का आदर्श है। समाज में पतिव्रता नारी को सम्मान दिया जाता है। डॉ. मनमोहन सहगल के शब्दों में - "भारतीय समाज में स्त्री का माता के बाद दूसरा एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप पत्नी का है। युवा होने पर माता-पिता सुपात्र को कन्यादान कर देते हैं तो वह उस पुरूष की पत्नी एवं उसकी गृहस्थी की स्वामिनी बनती है।" मन्नू भंडारी ने भी सामाजिक जीवन में पत्नी को बड़ा सम्मानजनक एवं विशिष्ट पद प्रदान किया है। उनका कथन है कि - "सन्तानोत्पादन के लिए वस्त्राभूषण से आदर-सत्कार के योग्य घरों की शोभारूपिणी ये स्त्रियाँ और लक्ष्मी घरों में समान हैं, अर्थात् 'श्री' और 'स्त्री' में कोई भेद नहीं है। प्रतिदिन का लोक व्यवहार, अतिथि सत्कार, सामाजिक संबध, भोजनादि, गृह प्रबन्ध स्त्रियों पर ही अधिक निर्भर करता है। पति-सास-ससुर, गुरुजनों ये सब स्त्रियों के अधीन हैं। देवऋण और पितृऋण से केवल पत्नी ही उऋण कर सकती है, ऐसा भारतीय धर्मशास्त्रों में कहा गया है। 'पतिव्रता पति को भजै, मुख से नाम न लेत'। पत्नी का पति के वंश की मर्यादाओं का पालन करना और पति को देवता या भगवान के स्वरूप में देखना हमारी परम्परा रही है।

परिवार में सन्तानों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। माता-पिता धनोपार्जन कर अपने सन्तानों का विधिवत् पालन करते हैं। सन्तान का योग्य वर या वधू से विवाह भी माता-पिता का अधिकार भी है और कर्तव्य भी है। पुत्र-पुत्रियों से माता-पिता अनेक अपेक्षायें रखते हैं और उनको पूरा करना सन्तान का कर्तव्य है।

परिवार में माता-पिता और संतान के अलावा भी कई सदस्य जैसे कि देवर-जेठ, चाचा-ताऊ, देवरानी-जेठानी, चाची-ताई अेनक सम्बन्धी होते हैं। कई बार ये परिवार विघटन की स्थितियाँ भी खड़ी कर सकते हैं। एक बड़ी प्राचीन किवदन्ति है कि 'जहाँ चार बर्तन होते हैं वो खटकते ही हैं' अर्थात् बड़े परिवारों में थोडी-बहुत कलह, विवाद और परस्पर ईर्ष्या-द्वेष चलता ही रहता है। सास-बहू, ननद-देवर के साथ नोंकझोंक तो प्रायः अवश्यम्भावी ही है किन्तु हमारे संयुक्त परिवारों का ढाँचा कुछ इस प्रकार निर्मित है कि इन छोटे-मोटे झगडों को निपटाने वाले भी परिवारों में कोई न कोई निकल ही आते हैं।

अनुशासन और मर्यादा :

परिवार में रहकर ही व्यक्ति अनुशासन-मर्यादा का पालन करना सीखता है। परिवार में बडे सदस्य की आज्ञा का पालन परिवार के कनिष्ठ सदस्य करते हैं। बड़ों की मर्यादा - छोटों के पालन उनके संवर्द्धन और प्रोत्साहन में होती है। बडे छोटों के मध्य परस्पर सम्मान का भाव होना चाहिए।

परिवार सुचारू रूप से चल सके इसके लिए कुछ दायित्वों का निर्वाह करना पडता है, जिससे परिवार प्रगति के पंथ पर संचरणशील होता है। पुत्र, माता-पिता के प्रति आज्ञाकारी हो, पत्नी पति के प्रति शांत तथा मधुर वाणी का प्रयोग करने वाली हो, भ्राता अपने भ्राता से बहिन बहिन से द्वेष न करे और एक दूसरे के प्रति मधुर वाणी में वार्तालाप करे, तभी परिवार की मर्यादा बरकरार रहेगी। तीन-चार पीढी के सदस्यों के संयुक्त निवास के कारण प्रत्येक सदस्य का व्यवहार नियन्त्रित तथा अनुशासित रहता है।

............15 ... .

पारिवारिक आचार-संहिता और रीति-नीति :

परिवार में कुछ दायित्वों का निर्वाह करना पडता है, जिससे परिवार प्रगति पंथ पर रहे, और व्यावहारिक सिद्धांत परिवार के सदस्यों के जीवन को सुखमय और शांतिमय बनाते हैं। पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर पारिवारिक नीति का निर्धारण वैदिक काल से किया गया है। उस समय जीवन की सुखमयता का आधार पारिवारिक सुख-शांति को ही मानते थे। परिवार में सभी सदस्य एक-दूसरे से प्रेमभाव से रहें और पारिवारिक नीति का आचार करें।

अथर्ववेद के ये शब्द पारिवारिक नीति का स्पष्टीकरण करते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है : आचार्य ब्रह्मा की, पिता-प्रजापति की, माता- पृथ्वी की तथा भ्राता निजात्मा की ही मूर्ति होते हैं। माता-पिता को ईश्वर की तरह समझो और ईश्वर तथा पितृ कार्यो मे प्रमाद न करो। महात्मा विदुर ने पारिवारिक नीति को बताते हुए कहा है : - "जो व्यक्ति अकेला ही सुन्दर पदार्थ खाता है, श्रेष्ठ घर में रहता है और अपने आश्रितों में बिना बाँटे भोजन करता है, भला उससे अधिक नृशंस संसार में कौन हो सकता है?"[18] वैदिक काल का व्यक्ति इस धारणा के प्रति भली-भाँति जागरूक था कि राष्ट्र तथा समाज के उत्थान के लिए उसी की आधारभूत इकाई परिवार में पूरी तरह से बंधुत्वभाव तथा मैत्री बंधन बना रहना चाहिए और किसी भी रूप में कलह तथा अशांति का पूर्ण अभाव रहना चाहिए। यही भावना वैदिक युग में पारिवारिक नीति का आधार मानी जाती थी। स्वतंत्रता के युग मे परिवार सम्बन्धी नीतियों में परिवर्तन दिखाई देता है और इन बदलों का प्रभाव पारिवारिक सम्बन्धों पर पड़ा, इससे विघटन से जुड़े प्रश्न खड़े हुए।

अतिथि सत्कार :

"अतिथि देवो भवः।"

हमारे समाज ने अतिथि को देवों के समान माना है। आतिथ्य भी गृहस्थ जीवन का अनिवार्य अंग आज हमारे जीवन में माना जाता है। यह सद्गृहस्थी का धर्म भारतीय परिवार की महत्वपूर्ण विशेषता है। साधु-संतों की सेवा से हमें उन से आशीर्वाद मिलता है और यह परिवार के दायरे तक सीमित नहीं है, नागरिक, संस्थाओं और राष्ट्र का भी धर्म है। अतिथि सभी समान होते हैं, फिर भी संत और नज़दीकी कुटम्बीजन और शिष्टजन विशेष सत्कार के अधिकारी होते हैं। उनके प्रवेश और समागम से घर, नगर, देश धन्यता को प्राप्त करते हैं।

गृहस्थ जीवन ही परमार्थ का आधार है। परिवार प्रेम ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' बन जाता है। भारतीय परिवार का यह उच्च आदर्श विश्व की अन्य संस्कृतियों में दुर्लभ है। गृहस्थ के द्वार पर आये याचक को निराश भेजना धर्म-वर्जित है।

"साँई इतना दीजिए, जा में कुटुम समाय,

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।"

(3) परम्परागत भारतीय परिवार की विशेषताएँ :

भारतीय सामाजिक जिन्दगी का महत्व संयुक्त परिवार की इकाई था।

ओ. मेली के मत अनुसार -

"the joint family was the constituent atom of the social order and the centre of jural relations"[19]

ऐसी संयुक्त परिवार व्यवस्था को सामूहिक संस्था कहा गया। उसमें समान पुरूष, पूर्वजों के पुरूषों, उनकी पत्नियाँ और अपरिणित नारियों का समावेश होता था।

परम्परागत भारतीय परिवारों की लाक्षणिक विशेषताएं इस प्रकार थीं।

(i) परम्परागत भारतीय परिवार पितृस्थाई, पितृवंशी और पितृसत्ताक होते हुए संयुक्त निवास, संयुक्त मिलकत, संयुक्त भोजनशाला और संयुक्त पूजा-आराधना का विधान होता है।

(ii) मिलकत की विरासत सिर्फ पितृवंश को ही मिलती थी और उस पर पुत्रियों का कोई अधिकार न था। मिलकत व्यक्ति की नहीं परिवार की मानी जाती थी।

(iii) पारिवारिक समस्याओं को सुलझाना केवल आदमी ही करता और ज्ञाति पंचायतों में भी परिवार का प्रतिनिधित्व वही करता।

(iv) परिवार में स्त्री-पुरूष के बीच सामाजिक आडंबर था और इसी वजह से परदा प्रथा प्रचलित थी।

(v) संतानों की शादी माता-पिता की आज्ञा से ही होती थी। शादी दो व्यक्तियों के परिवारों का मिलन माना जाता न कि दो व्यक्तियों का। माता-पिता संतान के लिए जीवनसाथी की पसंदगी व्यक्तिगत गुणों के द्वारा न करके परिवारों, कुटुंब, कबीले के आधार पर करते थे।

(vi) ज्यादातर बालविवाह होते थे, संतानों को अपना जीवनसाथी ढूंढने का हक नहीं था। प्रेमविवाह का कोई अवकाश ही नहीं था। पति-पत्नी के बीच का प्रेम, विवाह का ही परिणाम माना जाता।

(vii) विवाह संबंध अनिवार्य माना जाता। कन्यादान का आदर्श केन्द्रस्थान पर रहता, जो विवाह नहीं करता वो नर्क में जाता है, ऐसी मान्यता थी।

(viii) विवाह को संस्कार कहा गया, विवाह विच्छेद का तो कोई स्थान ही नहीं था। स्त्रियों के लिए दूसरा विवाह वर्जित था। विधवा स्त्री को भी पवित्र जीवन बिताना पडता, और पति भक्ति धर्म का आचरण करना पडता। पति की मृत्यु के उपरांत परीक्षावत् उन्हें सतीप्रथा का भी पालन करना पडता।

(ix) बहुपत्नीत्व और वेश्याओं को स्वीकृत किया जाता, धार्मिक वेश्यावृत्ति को देवदासी के नाम से जाना जाता।

(x) पुत्र का महत्व था, और पुत्री की अवगणना होती। नववधू को ज्यादा मान नहीं मिलता किन्तु पुत्र पैदा होने के बाद ससुराल में स्थान मिलता, पुत्र प्राप्ति को जीवन में आशीर्वादरूप माना जाता और पति की सेवा करना ही पत्नी का धर्म माना जाता।

(xi) संतान न होना स्त्री के लिए अभिशाप बन जाता और उसे पूर्व जन्म का पाप कहते और उसमें पुत्रविहीन स्त्री को कमनसीब मानते।

(xii) परिवार में ज्यादा से ज्यादा संतानें हो, ऐसी आशा की जाती। परिवार के लिए एक पुत्र और एक पौत्र तो आवश्यक माना जाता था।

उपर्युक्त सभी कारण परम्परागत भारतीय परिवार की वह अनोखी व्यवस्था हुआ करती थी जिसमें कम से कम तीन तथा अधिक से अधिक पाँच पीढ़ी तक के जीवन सदस्य रहते एवं एक घर, एक चूल्हा, एक मुखिया, एक तिजोरी तथा एक पक्ष के रक्त सम्बन्धों को मान्यता देते थे।

परम्परागत भारतीय परिवार के दो प्रकार माने गये हैं:

- मिताक्षरा भारतीय परिवार
- दायभाग भारतीय परिवार

(I) मिताक्षरा भारतीय परिवार :

मिताक्षरा परिवारों में पुरूष सदस्यों के पास ही सर्वाधिकार सुरक्षित रहते हैं, पारिवारिक संपत्ति पर सिर्फ उनका ही अधिकार रहता है। पुरूष का एक-चक्री शासन।[20]

(II) दायभाग भारतीय परिवार :

उपर्युक्त कथन से विपरीत यह परिवार स्त्री सदस्यों को भी आर्थिक अधिकार देता है। इस सिद्धांत को विशेषतया बंगाल तथा आसाम के हिन्दुओं ने स्वीकार किया था। इसके अनुसार सम्पत्ति में स्त्रियों का भी पुरूषों के समान अधिकार होता है। 1937 के अधिनियम के पश्चात् पुत्रियों को भी पिता की

सम्पत्ति पर समान अधिकार प्राप्त है। विवाहित होने पर भी यह अधिकार प्राप्त है।[21]

संरचना तथा स्वरूप के आधार पर परम्परागत भारतीय परिवार के कई स्वरूप प्रचलित हैं। शुरूआत से लेकर अब तक परम्परागत भारतीय परिवारों की यही विशेषताएँ चली आ रही हैं। (१) पितृसत्तात्मक परिवार (२) मातृसत्तात्मक परिवार (३) उभय सत्तात्मक परिवार (४) मातृवंशीय परिवार (५) पितृवंशीय परिवार (६) नव वंशीय परिवार। निम्न चर्चा इन छः प्रकारों से जुड़ी हुई है।

जिस परिवार का नियंत्रण पुरूष सदस्यों (मुखिया पुरूष) के पास होता है वे पितृसत्तात्मक परिवार होते हैं और सम्पत्ति का उत्तराधिकार सबसे बडे पुत्र को प्राप्त होता है। पितृसत्तात्मक परिवारों से ज्यादा मातृसत्तात्मक परिवारों में गृह-कलह अधिक पाये जाते हैं। सास-बहू, ननद-भाभी का झगड़ा तो इन परिवारों का वह प्रसिद्ध पहलू है, जो संसार में हिन्दू समाज की प्रमुख विशेषता के रूप में प्रचलित है।

इन परिवारों में दादा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, अविवाहित बुआ, माता-पिता, भाई-भाभी, भतीजे-भतीजी तथा अविवाहित बहनें साथ-साथ रहते हैं। परंपरागत परिवारों का यही स्वरूप सबसे ज्यादा प्रचलित है। उभय सत्तात्मक परिवारों में स्त्री-पुरूष दोनों की शक्ति को महत्वपूर्ण माना जाता है। स्त्रियाँ अगर चाहें तो उन्हें नौकरी करने की भी छूट मिलने लगी है। वर्तमान समय में मध्यम तथा उच्च

वर्ग के हिन्दू समाज में ऐसे परिवारों का स्वरूप अधिक विकसित हो रहा है। मातृवंशीय परिवारों में बच्चों का वंश माता के नाम से चलता है। पुत्री जन्म पर प्रसन्नता और पुत्र जन्म पर बोझ का अनुभव होता है। पितृ-वंशीय परिवारों में सन्तानों का परिचय पिता के वंश पर आधारित है। धार्मिक परम्परा के अनुसार कुल-गोत्र के नामादि पितावंश से सम्बन्धित होते हैं। विवाह के पश्चात् स्त्री का कुल-नाम परिवर्तित होता है और पिता का नाम पीछे लगता है। नववंशीय भारतीय परिवारों मे आन्तर्जातीय विवाह होने पर या फिर विशेष परिस्थितियों के कारण जब यह निश्चित नहीं हो पाता कि वंश की नामावली कैसे आगे बढे तो नववंशीय परम्परा प्रचलित हो जाती है। उदाहरणार्थ : श्री लालबहादुर शास्त्री जो मूलतः श्रीवास्तव थे, मगर अपनी डिग्री का शब्द अपने नाम के आगे लगाया और वे इस नाम से इतने प्रसिद्ध हुए कि उनकी आनेवाली पीढ़ी जैसे उनके संतानों को यह नया वंशनाम 'शास्त्री' के रूप में प्राप्त हो गया। जब माता या पिता के पक्ष का वंश-नाम महत्वहीन हो जाये तथा कोई नया नववंशीय नाम प्रचलित हो जाये, ऐसा परिवार नववंशीय भारतीय परिवार होता है। इस में संतानों का महत्व अधिक और स्त्री-पुरूष की उपेक्षा। अपना नाम अपनी मर्यादा तथा माँ-बाप की इच्छाओं के अनुरूप कार्य करने की भावना जाग्रत होती है और मानसिक रूप से स्वतंत्रता अनुभव करते हैं।

शुरूआत से लेकर आज भी यही परम्पराएँ चली आ रही हैं। अगर कहीं यह संरचना परिवार में बदल जाती है और परिवार का स्वरूप बदलता है तब विघटन आ जाता है। तब संयुक्त परिवार में सम्मिलित सभ्यों में विघटन होता है। तब पारिवारिक

विघटन की स्थिति उपस्थित होती है।

परम्परागत भारतीय परिवार के विशिष्ट कार्य जैसे कि सामाजिक कार्य, आर्थिक कार्य, मनोवैज्ञानिक कार्य आदि परिवार के मूलभूत माध्यम होते हैं। जिनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार, समूह, समाज, जाति-रिश्तेदारों तथा राष्ट्र के प्रति कर्तव्यपरायणता का भाव प्राप्त करता है। अगर इन सब से अलग कोई भाव उपजता है, कोई स्थिति बनती है, तब विघटन उपस्थित होता है। इसी तरह संयुक्त परिवार के गुण (Merits of Joint Family) जैसे परोपकारीभावना, पारिवारिक बीमा, अधिक उत्पादन तथा अधिक लाभ, नियंत्रण तथा अनुशासन, मनोरंजन का साधन, नवविवाहितों पर हलका भार, व्यक्तित्व विकास में सहायक आदि परम्परागत भारतीय परिवार के गुण व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास तथा समाज की गतिशीलता में वृद्धि करते हैं।

व्यवहारिक रूप से आज संयुक्त परिवार व्यवस्था अधोगति की ओर बढ़ रही है। प्रतिदिन संयुक्त परिवार की व्यवस्था में सामंजस्य का भाव कम हो रहा है। संयुक्त परिवार के दोष रूप आलस्य में वृद्धि, गतिशीलता में बाधा, कार्य-कुशलता में बाधा, बच्चों की उपेक्षा, व्यक्तित्व के विकास में अवरोध, द्वेष तथा कलह, स्त्रियों की निम्न स्थिति, मुखिया की निरंकुश प्रवृत्ति, गोपनीयता का अभाव, असहयोग, पर्दाप्रथा, दहेज को बढ़ावा, पीढ़ियों का संघर्ष आदि कुछ दोष अनेक लाभकारी पक्षों के होते हुए भी परम्परागत भारतीय संयुक्त परिवार की संरचना कभी-कभी व्यकितत्व के विकास में सबसे बड़ी बाधा बनकर उपस्थित होती है। इन दोषों को समाप्त करने का

एक ही उपाय है कि परिवार का हर सदस्य आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनने का प्रयास करे।

मगर आज परिस्थिति विपरीत हो गई है। इन दोषों के कारण परिवार में भेदभाव, आत्मीयता का अभाव, मानसिक परिताप का प्रभाव बढ गया है। और आज ज्यादा से ज्यादा परिवार विघटित हो रहे हैं।

(4) परिवार के कार्य

जैविक कार्य - वंशानुक्रम से जुड़े कार्य - अनुशासनात्मक एवम् शिष्टाचारपूर्ण स्थायी यौन तुष्टि - प्रजजन और संतान का पालन-पोषण - संवेगात्मक संतृष्टि शारीरिक कार्य - आर्थिक कार्य - धार्मिक कार्य - राजनैतिक कार्य - शैक्षणिक कार्य - सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य - मनोरंजन संबंधी कार्य.

(1) जैविक कार्य :

परिवार में सेक्स, प्रेम और विवाह, मानव-जीवन के महत्वपूर्ण कार्य हैं। मानव के साथ जैविक कार्य जन्म से रहता है। भारत में भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरूषार्थो में इसकी गणना की जाती है। परिवार में इन कार्यों का होना आवश्यक माना गया है। अगर यह नहीं रहा, तो परिवार समाप्त होने की आशंका रहती है। डॉ. प्रमिला कपूर ने कहा कि "सेक्स और जीवन का जन्म एक साथ हुआ और वे एक-दूसरे से अभिन्न हैं। सेक्स की सहज प्रवृत्ति जीवन के गति-चक्र में सदा ही शक्तिशाली प्रेरक तथा आगे

बढ़ने वाली शक्ति रही है।"[22] परिवार अगर इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित नहीं करता है तो समाज में अवय्वस्था फैलने का डर रहता है। हेवलींक एलिस यह मानते हैं कि - "यौन-जीवन सम्पूर्ण व्यक्ति में परिव्याप्त है, और मनुष्य की यौन-बनावट उसकी सामान्य बनावट का अंग है.... मनुष्य वही है, जो उसका सेक्स है।"[23] हिन्दू शास्त्रों में भी जैविक कार्य को सन्तानोत्पत्ति, यौन-इच्छाओं की पूर्ति तथा प्रजाति का विकास माना गया है। व्यक्ति में सेक्स और प्रेम दोनों तत्व विद्यमान रहते हैं। सेक्स-तृप्ति के पश्चात् व्यक्ति की क्षुधा मानसिक ही होती है जिसे हम नर-नारी के अतिरिक्त नर-नर, नारी-नारी, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व तथा परम रूप में आध्यात्मिक धरातल पर देख सकते हैं। कुल का उत्कर्ष इसी जैविक उत्तरदायित्व से जुड़ा है। सदरलैण्ड और वुडवर्ड के शब्दों में - "यह एक मौलिक जैवकीय कार्य जो कि परिवार करता रहता है, एक ऐसा कार्य जो कि किसी भी मानव या पशु समाज के अस्तित्व के लिए नितान्त अनिवार्य है।"[24] समाज को गतिमान रखने के लिए जैविक कार्य बहुत जरुरी है तथा मृत्यु के बाद खाली हुआ स्थान संतान ही भर सकती है। संतानोत्पत्ति का यह महत्वपूर्ण कार्य विवाहोपरान्त करने की व्यवस्था समाज द्वारा मान्य की गई है। वैसे परिवार के बिना भी संतान प्राप्ति हो सकती है मगर उसे समाज स्वीकार नही करता। विश्व में प्रत्येक समाज, परिवार, जाति, वंश एवं व्यक्ति का अपना अलग-अलग ढाँचा होता है, जिसमें व्यक्ति जीवन जीता है। उसी के मध्य एवं अनुरूप वह अपने व्यक्तित्व को विकसित करता है। इस विकास में अर्थ और धर्म का महत्वपूर्ण हाथ रहा है।

(2) वंशानुक्रम से जुड़े कार्य :

विभिन्न समाजों में परिवार के विभिन्न रूप-रचना के मूल उद्गम को जानना कठिन कार्य है। संतान, परम्परा और आर्थिक सुरक्षा की प्राप्ति के लिए भी परिवार की आवश्यकता को माना गया है। समाज के साथ-साथ परिवारों का रूप भी परिवर्तित हुआ है क्योंकि प्रत्येक मानव ने अपना एक अलग ढाँचा (समाज) बनाया है इसके हिसाब से उनकी रूढ़ियाँ, स्थानीय, भौगोलिक, सांस्कृतिक व्यवस्था भी अलग-अलग ही रही है और इसके हिसाब से परिवारों के स्वरूप में भी विभिन्नता आ जाती है। लिंटन के अनुसार - "समाजों ने परिवार के विकास के लिए किसी एक निश्चित रेखा का अनुसरण न करके विभिन्न रेखाओं का अनुगमन किया।"[25]

समाजशास्त्रियों के अनुसार परिवार की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत निरूपित किये गए हैं। सर्वप्रमुख पितृसत्ताक परिवारों का है। तत्पश्चात् मातृ-सत्ताक परिवारों का, अन्य विशेष महत्व नहीं रखते।

(3) अनुशासनात्मक एवं शिष्टाचारपूर्ण स्थायी यौन तुष्टि :

यह परिवार का प्रथम अनिवार्य कार्य है। भारतीय विधि के अनुसार परिवार का प्रमुख कार्य यौन-तुष्टि की स्थायी व्यवस्था को माना है। यौन तुष्टि और परिणामस्वरूप वंशवृद्धि को परिवार का प्रमुख कार्य स्वीकार किया गया है। स्त्री-पुरूष मे यौन-तुष्टि, जीवन-साथी की भावना को जन्म देती है। काम-तुष्टि न होने से कुंठा जन्म लेती है, जो व्यक्तित्व के विकास में बाधक बन सकती है। इससे

असमायोजन और पारिवारिक संबंधों में बिखराव उत्पन्न होता है। पुरातन समय में यौन संबंध केवल संतान प्राप्ति का साधन था। आधुनिक परिवार इस आवश्यकता की तुष्टि पर अधिक बल देता है। स्वतंत्र यौन-संबंध किसी भी समाज को मान्य नहीं है। विवाह के पश्चात् ही यौन संबंध को उचित एवं स्वस्थ माना गया है। हैवलींक ने 'यौन-तुष्टि' की असफलता से वैवाहिक संरचना उखड जाती है, ऐसा माना है।'[26]

❊ पितृ-प्रधान परिवार :-

इस परिवार में पुरूष या पिता को परिवार में समस्त अधिकार प्राप्त हैं। इससे वंश पिता के नाम से चलता है। तथा स्त्री घर की संचालिका रहती है और पुरूषों को अर्थोपार्जन के लिए बाहर का क्षेत्र संभालना पडता है। परिवार की समस्त संपत्ति पर उसका अधिकार होता है। परिवार पर पिता कठोर नियंत्रण रखता है। वैदिक काल में पुरूष का पत्नी और संतान पर पूर्ण अधिकार होता था। पत्नी का पति के उपर कोई अधिकार न था। पत्नी को पति की गुलामी करनी पडती थी। पर अब स्थिति में परिवर्तन आया है। परंतु अभी भी रूढ़िवादी परिवारों मे यही स्थिति पाई जाती है।

❊ मातृ-प्रधान परिवार :

मातृ-प्रधान परिवार में समस्त सत्ता स्त्री के हाथ में रहती है। मातृ-प्रधान प्रणाली में स्त्री का पुरूष पर आधिपत्य रहता है। वही परिवार के सदस्यों के कर्तव्यों का निर्धारण करती है। और माता से ही वंश का नाम चलता है। वह समस्त सम्पत्ति

की स्वामिनी तथा परिवार की शासिका होती है। और वही परिवार की कर्ता-धरता होती है और आर्थिक तथा धार्मिक कार्यो की प्रधान होती है।

(4) प्रजनन और संतान का पालन-पोषण :

प्रजनन परिवार का मुख्य कार्य है। भारतीय समाज में हिन्दू-प्रथा के अनुसार कोई भी धार्मिक काम पुत्र के बिना संभव नहीं है। अगर विवाह के बाद प्रजनन में कोई बाधा आती है तो पुनर्विवाह किया जाता है, क्योंकि संतान से परिवार का वंश आगे बढ़ता है। संतान का उचित लालन-पालन परिवार में ही होता है। परिवार का कर्ता जो कि पिता है, 'पाति रक्षत्यपत्यं यः स पिता' अर्थात् संतान की रक्षा करने वाला। मनुष्य जाति के आरंभ में पिता का कार्य सन्तान के लिये भोजन लाना और संकटों से उनकी रक्षा करना था, मगर आज एक और कार्य शिक्षण का बढ गया है। संतान को जन्म देना ही महत्वपूर्ण काम नहीं है, बल्कि उसका भरण, रक्षण और शिक्षण। यौन-तुष्टि, प्रजनन, संतान के पालन-पोषण का कार्य परिवार में ही अच्छी तरह होता है। परिवार के द्वारा ही अपनी संतान के लिए भोजन-वस्त्र और निवास की व्यवस्था की जाती है। हालाँकि आजकल बच्चों का पालन-पोषण करने के लिये अन्य संस्थायें भी बनी हैं, परंतु जो वातावरण परिवार में मिलता है वह अन्यत्र नहीं मिलता। संतान का परिवार में रहना उचित माना जाता है। बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था तथा अपाहिज होने पर परिवार ही उनकी अच्छी देखभाल कर सकता है। डेनिस ने लिखा है - "प्रत्येक नया परिवार विवाह के पश्चात् यथासम्भव एक स्वतन्त्र घर स्थापित करता है, जो कि पति-पत्नी की रूचि और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।"[27]

(5) संवेगात्मक संतुष्टि तथा शारीरिक कार्य :

मनुष्य को निकटतम प्रेमिल पारिवारिक संबंधों की जरूरत होती है। वैज्ञानिकों का मत है कि कदाचित संवेगात्मक कुंठाओं और आचरण-सम्बन्धी समस्याओं के कारण कई व्यक्तियों में प्रेम का अभाव होता है। मनुष्य की प्रेम-भावना की तुष्टि परिवार में ही सम्भव है। परिवार में पति-पत्नी-बच्चे दिनभर के श्रम को अपने परस्पर स्नेहिल व्यवहार से दूर कर सकते हैं। आज ज्यादा से ज्यादा परिवार बिखर रहे हैं, फिर भी परिवार को ही स्वर्ग कहा जाता है, जहाँ मनुष्य को प्रेम, अपनापन और प्यार की तुष्टि मिलती है। मगर यंत्रवत जिंदगी हो जाने के कारण आजे के बदलते जीवन-मूल्यों से यह प्यार की तुष्टि भी संभव नहीं हो पाती है। संतानोत्पत्ति के पश्चात् उसको बड़ा करना, योग्य बनाना तथा उसकी रक्षा करना परिवार का कर्तव्य है।

(6) आर्थिक कार्य :

परिवार में सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन का प्रबन्ध करना जरूरी है। पुरातनकाल में परिवार के उपभोग के लिए कुछ पदार्थ परिवार में ही बनते थे। परिवार के सभी सदस्य परिवार के उद्योग व्यवसाय में यथासाध्य हाथ बँटाते थे। भारतीय संयुक्त हिन्दू परिवारों में पारस्परिक आर्थिक सुरक्षा के साधन थे। आधुनिक युग में उसका महत्व कम होता जा रहा है। परिवार में आज सभी की महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं। लोग आज समस्त सुख-सुविधाएँ बिना परिश्रम के यथाशीघ्र प्राप्त कर लेना चाहते हैं इसीलिए परिवार के हर सदस्य का

धनोपार्जन करना आज की आवश्यकता बन गया है और इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता और क्षमता से सहयोग प्रदान करता है। आज परिवार में सिर्फ पुरूष ही नहीं स्त्री भी कन्धे से कन्धा मिलाकर बाह्य परिवेश में काम कर रही है और अपने परिवार के लिए धन इकट्ठा करती है। परिवार की कुछ चल-अचल सम्पत्ति होती है। सम्पत्ति परिवार के लिए आवश्यक है, जो परिवार की सुरक्षा का साधन है। परिवार की सम्पत्ति का जरूरत पड़ने पर विभाजन भी करना पडता है, ताकि आनेवाले समय में परिवार में संघर्ष न हो और पारिवारिक टूटन या बिखराव न आने पाये।

(7) धार्मिक कार्य :

परिवार का प्रमुख कार्य संतान को धार्मिक शिक्षा देना भी है। प्रत्येक परिवार में अपनी आस्था के अनुसार देवी-देवताओं की पूजा होती है और परिवार के प्रत्येक सदस्य उसमें भाग लेते हैं। प्रत्येक परिवार किसी न किसी धर्म का अनुयायी होता है, वे उसी देवता / ईश्वर की पूजा करते हैं और एक समान व्रत और त्यौहारों को मानते हैं। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार कोई भी धार्मिक कार्य पत्नी के बिना अपूर्ण समझा जाता है। संतान को धार्मिक प्रथाओं का ज्ञान परिवार में ही प्राप्त होता है। यज्ञ, धार्मिक उपदेश पंडितों और ज्ञानियों द्वारा बच्चों का धार्मिक दृष्टिकोण इससे बना रहता है। भारतीय परिवारो में तो परिवार का प्रथम उद्देश्य धार्मिक कार्यो की पूर्ति को ही माना गया है परन्तु धर्म का महत्वपूर्ण स्थान हिन्दू परिवारों में आज भी विद्यमान है।

धार्मिक प्रथाओं, पाप-पुण्य आदि का ज्ञान भी परिवार से ही प्राप्त होता है। परम्परागत भारतीय परिवार के निर्माण का मुख्य आशय धार्मिक कार्यो को पूर्ण करना ही माना गया है।

(8) राजनैतिक कार्य :

परिवार राजनीतिक कार्यो की नींव के समान है। परिवार में मुखिया का स्थान होता है, जो परिवार के सदस्यों पर नियंत्रण रखता है। डॉ. मजूमदार का कथन - "कर्ता ही परिवार का वास्तविक शासक होता है, वही परिवार का जज और जूरी होता है और पारिवारिक झगड़ों का निपटारा करता है। वास्तव में वह राजनैतिक मुखिया होता है, क्योंकि सामाजिक, धार्मिक और सामुदायिक समस्त प्रकार के कार्यों में और स्थानीय ग्राम-पंचायत में वही परिवार का प्रतिनिधित्व करता है।"[28] परिवार बच्चों का लालन-पालन करता है और राष्ट्र उनके कल्याण की योजनाएँ बनाता है क्योंकि वह बच्चे भावी नागरिक हैं।

(9) शैक्षणिक कार्य :

परिवार में बच्चों को शिक्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी होता है। परिवार ही संतान की प्रथम पाठशाला है। आरम्भिक शिक्षा संतान को परिवार में ही मिलती है और जीवन का पहला पाठ वह परिवार में ही पढ़ता है। बच्चे के व्यक्तित्व का निर्माण भी परिवार की शिक्षा पर ही निर्भर करता है, इसलिए परिवार को एक महत्वपूर्ण शिक्षण संस्था कहा गया है।

व्यक्ति का व्यावहारिक ज्ञान, उठने-बैठने, खाने-पीने, चलने का तौर-तरीका भी बच्चा परिवार में ही सीखता है। व्यावसायिक शिक्षण आज परिवार के स्थान पर विश्व विद्यालयों, महाविद्यालयों और टेकनिकल कॉलेजों मे दिया जाता है किन्तु सामाजिकों के साथ काम करने का व्यावहारिक ज्ञान बालक को परिवार में ही प्राप्त होता है।

(10) सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य :

परिवार सामाजिक रस्मो-रिवाज भी सीखता है, साथ-साथ सुचारू रूप से पालन भी करता है। एक अच्छा समाज इससे ही निर्मित होता है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति सामाजिक विधि-विधानों से परिचित होता है, और समाज की संस्कृति को आगे आनेवाली पीढ़ी में हस्तान्तरित करता है।

समाज में गठित सभी समुदायों में परिवार ही ऐसा समुदाय है जो कि मनुष्य के साथ जीवनभर रहता है। यदि उसे परिवार से अलग भी रहना पड़े तो परिवार के प्रति 'जुड़ाव' की 'भावना मात्र' उसे परिवार से जोडे रखती है। यही भावना उसे ससार-यात्रा में नैतिक-आत्मिक बल प्रदान करती है। विवाह संबंध जोड़ने के समय परिवार और कुल का विचार विशेष रूप से किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अच्छे परिवार के साथ संबंध जोड़ने का प्रयास करता है। अच्छे परिवार का होने से व्यक्ति सभी क्षेत्रों में सहज ही लाभान्वित हो जाता है।

(11) मनोरंजन संबंधी कार्य :

सामान्यतः परिवारों में पूजा-पाठ, अखण्ड मानस पाठ, भजन-कीर्तन, संस्कार तथा दादी-नानी की कहानियाँ मनोरंजन का माध्यम हुआ करती थीं, मगर आज उसका स्थान रेडियो, सिनेमा घर, टी.वी. नाटक, क्लबों और होटलों ने ले लिया है। विवाह, पारिवारिक उत्सव, संबंधियों से मिलना-जुलना, आनंद-प्रमोद यह सब सामाजिक एवं सांस्कृतिक होते हुए भी परिवार के मनोरंजन के साधन हुआ करते हैं और परिवार के सभी सदस्य हर्ष-उल्लास के साथ एकसाथ उसका आनंद प्राप्त करते हैं। हालाँकि आज व्यक्ति मनोरंजन पाने के लिए बाहर भटकता नजर आता है, फिर भी अपने परिवार के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य, अपने रस्मो-रिवाजों के अनुसार करता है और उसमें आनंद भी उठाता है।

(5) परिवार के विभिन्न संयोजन एवं विघटनकारी घटक :

छठे दशक के बाद की कहानियों में परिवार की व्यवस्था में बहुत बड़ा बदलाव आने लगा। इसके लिए पश्चिमी संस्कृति और पश्चिमी विचारधाराएँ, शिक्षण, औद्योगिकरण, वाहनव्यवहार से जुड़े हुए साधन यही घटक जवाबदार माने गये। ज्ञानवती अरोडा ने विघटन का अर्थ - " 'अव्यवस्थित' और 'बदलाव' का अर्थ है एक जैसी स्थिति से दूसरी स्थिति में जाना जो बेहतर जीवन के लिए हो, परिवेश के अनुकूल हो। जीवन मूल्यों का संक्रमण बदलाव है। मूल्य सदा बेहतर जीवन के लिए ही होते हैं। जबकि 'विघटन' या 'अव्यवस्था' की स्थिति पतनोन्मुखी होती है।"[29] मार्टिन न्यमेयर ने पारिवारिक विघटन को स्पष्ट करते हुए कहा है - "पारिवारिक

विघटन का अर्थ परिवार के सदस्यों में एकमतता और निष्ठा का समाप्त हो जाना अथवा पहले के सम्बन्धों का टूट जाना, पारिवारिक चेतना का समाप्त हो जाना अथवा पृथक्ता की भावना का विकास होना है।"[30] 'इलियट' एवं 'मेरिल' ने पारिवारिक विघटनकारी घटक को तीन वर्गो में विभाजित किया है।

(१) सामाजिक संरचना

(२) परिवार के परिवर्तित प्रकार्य

(३) वैयक्तिक एवं सामाजिक तनाव[31]

व्यक्ति की परिस्थिति एवं भूमिका तथा नवीन पदों को ग्रहण करने के फलस्वरूप सामाजिक संरचना बदलती है। पति एवं पत्नी में से किसी एक की भूमिका में असंतुलन होने से परिवार में विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। व्यक्ति की निर्भरता परिवार पर कम होती जा रही है। जिससे आज पारिवारिक विघटन बढ गया है। पति-पत्नी के सम्बन्धों में तनाव, संतान के प्रति व्यवहार में स्नेह का अभाव के कारण संतान का विकास रूक जाता है। आज वैयक्तिक स्वार्थ में वृद्धि हुई है। इससे परिवार के सदस्य एक-दूसरे से अलग जा बसते हैं। निकटतम सम्बन्धों में भी विवाद खडा हो रहा है, विघटन का कारण बन रहा है। मगर आज परिवार के रूप में परिवर्तन हो रहा है। विवाह अनुबंध और सदस्यों के बदलते पारिवारिक सम्बन्धों के कारण परिवार-रचना में परिवर्तन हो रहा है। विवाह सम्बन्धी स्वतंत्रता आज समाज में अधिक है। स्त्रियों के लिए विवाह बंधन आज कठिन नहीं है। विवाह के समय किये गए वचन अब केवल भारतीय संस्कृति के संस्कार मात्र रह गये हैं। स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता ने विवाह-बन्धन को एक नया मोड दिया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग ने आज शैक्षिक, नगरीय, औद्योगिक और तकनीकी प्रगति में परिवार के सदस्यों, जैसे पति-पत्नी, माता-पिता और बच्चों के सामने नई भूमिकाएँ प्रस्तुत की हैं, जिसके परिणामस्वरूप पारम्परिक पारिवारिक मूल्यों के विघटित होने से नयी समस्याएँ खड़ी हुई हैं। आज परिवारों में विघटन की प्रक्रिया का उद्‌भव संयुक्त परिवारों में नैतिक मूल्यों के कमजोर होने के कारण ज़मीन-जायदाद का बँटवारा होने लगा, परिवार की छोटी-छोटी इकाइयों ने अपने अलग भोजन और आवास की व्यवस्था कर ली और इस प्रकार परम्परागत संयुक्त परिवार टूटने लगे। परम्परागत भारतीय समाज आज के आधुनिक युग में विभिन्न घटकों की प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप परम्परागत भारतीय समाज की गति तीव्रतर हो गई है और दिशा भी बदल गई है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया के कारण परंपरागत भारतीय परिवारों का स्वरूप लघु होने लगा। परंपरागत रूढ़िगत संयुक्त परिवार तीन, चार या उससे भी अधिक पीढ़ियों के रक्त-सम्बन्ध से जुडकर रहा करते थे। यह संयुक्त परिवार सहनिवास, संयुक्त भोजनालय, सहभोजन, संयुक्त आवक और जायदाद के निर्वाह द्वारा बँधा रहता था। आधुनिक युग मे ऐसे परिवार पाना मुश्किल हो गया है क्योंकि भारत के नगरों में मध्यम और उच्च मध्यम वर्गों में छोटे संयुक्त परिवार या एकल परिवार संयुक्त परिवारों के स्थानापन्न बन गए हैं। आर्थिक परिस्थितियों से जुडे हुए झगडों नें परिवार के आकार को कम कर दिया है। आज अच्छी शिक्षा से जुडे कुछ घटको - उच्च महत्वाकांक्षा, बढ़ती हुई व्यावसायिक गतिशीलता, उच्च जीवनस्तर से जुड़ी इच्छा, वैयत्तिक स्वतंत्रता आदि ने छोटे परिवारों को बढ़ावा दिया है और व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करने की धीमे ज़हर जैसी एक जबर्दस्त विनाशक प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है।

(6) परिवर्तनशील स्थिति में पारिवारिक बदलाव

आज परिवार से लेकर हर क्षेत्र में परिवर्तन आ गया है। विवाह अनुबंध और सदस्यों के बदलते पारिवारिक सम्बन्धों ने परिवार-रचना को परिवर्तित किया है। औद्योगिकीकरण के कारण परिवार का जीवन स्तर सुधरा और परिवार की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं, जिन्हें पूरा करना आज के युग में कठिन हो गया जो कि एक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था। इसलिए परिवार के अन्य सदस्यों को भी घर से बाहर निकलकर काम करने की आवश्यकता महसूस होने लगी। व्यक्ति नये-नये साधनों की खोज में नगरों में आने लगे और संयुक्त परिवार विघटित होते गये। परिवार के प्रति लगाव कम होने लगा। परिवार समाज का प्राथमिक समूह है। परिवार टूटने से समाज टूटने लगता है। जब परिवार के सदस्यों की जो अपेक्षित भूमिका होती है, उन भूमिकाओं का निर्वाह निर्बल पड़ जाता है, तो वह पारिवारिक विघटन कहलाता है।

बदलाव के कारण पति-पत्नी सम्बन्धों में तनाव, सन्तान के प्रति व्यवहार में स्नेह का अभाव, जिससे बालकों का स्वस्थ विकास रूक जाता है। वैयक्तिक स्वार्थो में वृद्धि के कारण परिवार से व्यक्ति ऊबकर अलग जा बसता है। अत्यंत घनिष्ट एवं आत्मीय सम्बन्धों को भी तिलांजलि दे दी जाती है।

पारिंवारिक विघटन की रोकथाम माता-पिता ही संतान को समुचित शिक्षा देकर कर सकते हैं। परिवार का विघटन किसी भी दशा में उचित नहीं है। 'बदलाव'

एक प्रक्रिया है जो स्वाभाविक है, जिसे मनुष्य सुखी जीवन के लिए चाहता है। आज परिवार में परिवर्तित संरचना के कारण बदलाव बढ गया है। वर्तमान स्थिति में परिवार के रूप में परिवर्तन आ गया है। विवाह अनुबंध और सदस्यों के बदलते पारिवारिक सम्बन्धों ने परिवार रचना को भी परिवर्तित किया, आज इसमें कई परिवर्तन आ गये हैं। विवाह अनुबन्ध में शिथिलता, विवाह सम्बन्धी स्वतंत्रता आज समाज में अधिक है। स्त्रियों के लिए विवाह बन्धन अब अधिक कठोर नहीं है और विवाह के समय किये गए वचन अब केवल संस्कार मात्र रह गये हैं। स्त्रियों की परिवर्तनशील आर्थिक भूमिका ने विवाह अनुबन्ध को एक नया रूप दे दिया है। समृद्ध परिवार में नारी सम्पत्ति की स्वामिनी बन गई। पहले विवाह के अतिरिक्त कोई विकल्प नारी के लिए नहीं था। उसे पिता या पति के आश्रय में रहना पडता था। किन्तु अब परिस्थिति बदल गई है और नारी की सम्पूर्ण मनोवृत्ति इस परिवर्तन से प्रभावित हो गई है जिससे परिवार की संरचना में बदलाव आ गया है।

विवाह एक सामाजिक अनुबन्ध होने के कारण अब भी हिन्दू संस्कृति के अनुसार एक धार्मिक संस्कार है, मगर अब धार्मिक संस्कारों का महत्व कम हो गया है। अतीत में विवाह और यौन सम्बन्धों में बडा घनिष्ट सम्बन्ध था। आज उसका कोई महत्व नही है। पारिवारिक दायित्व का निर्वाह न करना भी अब धर्म विरुद्ध नहीं माना जाता है। पुत्र माता-पिता को उनकी असहाय अवस्था में छोड सकता है। पुत्री माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध भी विवाह कर सकती है।

चतुर्दिक परिवर्तन की स्थितियों में हमारे पारिवारिक ढाँचे में भी परिवर्तन होता गया। भौतिक सभ्यता ने जहाँ मानव-समाज को अज्ञात के अनुशासन के मुक्त कर उसके अपने महत्व और योग-क्षेम को महत्व दिया, वहीं उसे भौतिक भोग और समृद्धि के चक्रव्यूह में उलझाकर सारे पुराने और नये मूल्यों से रिक्त कर दिया। मूल्य रहित व्यक्ति अपनी भौतिक समृद्धि के लिए सारे पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों को तोडता गया और एक नये प्रकार के मूल्यहीन सम्बन्धों को निर्मित करता गया, जीवन की सहजता स्वयं एक मूल्य है। हमारी सभ्यता ने हमारे जीवन में इतनी कृत्रिमता डाल दी है कि हम मनुष्य की तरह जिन्दगी न जी कर एक यंत्र की तरह जीते हैं। धीरे-धीरे बनावटी जीवन मूल्यों और पद्धतियों को हम ओढकर बैठे हैं।

परम्परागत मूल्यों की अर्थहीनता का आभास प्रेमचन्द की अन्तिम कहानियों 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'कफ़न' आदि में बहुत पहले ही मिलने लगा था। बाद में जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर आदि कहानीकारो ने टूटते और बिखरते पुरातन जीवन-मूल्यों की सम्भावनाओं का यथार्थ चित्रण पथ-प्रशस्त किया।

आज नवयुवकों के विषय में कहा जा रहा है कि वे बिल्कुल स्वार्थी होते जा रहे हैं। विवाह के बन्धन से वे छुटकारा पाना चाहते हैं। आज परिवर्तनशील समाज में विघटन के कारण पति-पत्नी के बीच ही तनाव नहीं बल्कि माता-पिता एवं पुत्र के बीच भी तनाव की स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। पति-पत्नी के बीच का दाम्पत्य जीवन ही परिवार को संगठित रखने का मुख्य आधार है, पर आज बदलते परिवार में लोगों

की विचारधाराएँ बदल रही हैं और इस बदलाव के कारण आज परिवार टूटने और विघटित होने लगे हैं।

हिन्दी कहानियों के साठोत्तर काल में परिवार का रंग-रूप बदल गया है। इस काल की कहानियों में पाश्चात्य प्रभाव के कारण परिवार के बदलते स्वरूप का यथार्थ चित्रण किया गया है। पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव केवल परिवार के ढाँचे पर ही नहीं अपितु परिवारगत सम्बन्धों और संवेदनाओं में भी देखा जा सकता है। केवल सास-बहू वाले झगड़े की ओर ध्यान न देकर साठोत्तरी कहानियों में कहानीकारों ने व्यक्ति और परिवार के संघर्ष, घुटन, परिवार की आर्थिक स्थिति, उसके रूपगत परिवर्तन, परिवर्तनजन्य तनाव और व्यक्ति स्वातन्त्र्य की ओर अधिक ध्यान दिया है।

परिवार में प्रेम के स्थान की विभिन्न स्थितियों का चित्रण भी विभिन्न कहानीकारों ने अपनी कहानियों में किया है। आज परिवर्तनशील परिस्थिति में परिवार में लगाव, एकमयता ने स्वार्थ का स्वरूप ले लिया है। 'चीफ की दावत' भी मॉ-बेटे के लिए अनावश्यक वस्तु के समान है। 'आर्द्रा' की माँ गरीब और अमीर बेटों के बीच में डोलती हुयी जिन्दगी बिताती है। 'वापसी' पिता-पुत्र के सम्बन्धों पर उषा-प्रियवदा की एक बेहतरीन कहानी है।

छठे दशक की कहानियों में परिवार के संचालन में नयी और पुरानी पीढियों के संघर्ष को मुखरता दी गई है। वैसे भी इस काल की कहानियों में परिवार के

परम्परागत रूपों का वर्णन कम और बदलती हुई पारिवारिक स्थितियों एवं संवेदनशील सदस्यों का अधिक चित्रण हुआ है।

(7) संयोजन का मुख्य आधार आर्थिक सौरस्य एवं नैतिकता :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन किसी सीमा तक आर्थिक मूल्यों से प्रभावित रहा है। अर्थ पर ही समाज का विकास आधारित है, यह एक सर्वमान्य सत्य है। अर्थ केन्द्रित समाज में जन-जीवन के उतार-चढ़ाव का कारण अर्थ ही है। किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय आज उसकी आर्थिक स्थिति से निश्चित किया जाता है।

वर्तमान युग में आर्थिक विषमता दिन-प्रतिदिन बढ़ती रही है। इसी संकट ने माता-पिता तथा सन्तान के पारस्परिक सम्बन्धों के सन्तुलन को नया रूप दिया है। "परिवार में सम्बन्धों का बनना-बिगड़ना बहुत कुछ परिवार की आर्थिक स्थिति पर निर्भर है। जिन परिवारों की आर्थिक स्थिति उच्च होती है, उन सदस्यों में सम्बन्ध प्रायः शान्तिपूर्ण एवं मधुर होते हैं, इसके विपरीत अर्थाभाव में मनुष्य पंगु बन जाता है। उसकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। निष्क्रियता उसे दबोच लेती है। आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में मानसिक अशांति उत्पन्न होने पर बुद्धि-विवेक कुण्ठित हो जाते हैं। सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाते हैं।"[32] कई बार परिवार में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका कारण ऊपरी तौर पर भले ही नजर न आये पर वस्तुतः वे आर्थिक तनाव से ही उत्पन्न होती हैं। आर्थिक स्थिति से व्यक्ति के बाह्य क्रियाकलाप ही प्रभावित नहीं होते बल्कि उसकी मानसिक स्थिति पर भी

प्रभाव पड़ता है। 'अत्यधिक दरिद्रता भी पारिवारिक तनाव को उत्पन्न करती है। दरिद्रता के कारण परिवार चलाने में पग-पग पर कठिनाई आती है।"[33] स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज में मानव मूल्यों का विघटन बहुत तीव्र गति से हुआ। समाज में धन, सम्पत्ति का महत्व बढ़ता गया। भौतिक सुखों को किसी भी कीमत पर खरीदने के लिए मनुष्य मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करने लगा। यहीं से उसका पतन आरंभ हुआ। इसी से उपभोक्तावादी संस्कृति की शुरूआत हुई। यह उपभोक्तावादी संस्कृति पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था की देन है। इसी व्यवस्था ने मानव सम्बन्धों को बहुत प्रभावित किया। अधिक धनोपार्जन व्यक्ति को भ्रष्ट मार्ग पर ले जा रहा है। सम्पत्ति के लिए सम्बन्धों को नकारा जाने लगा, भौतिक सुख-समृद्धि ने मानव सम्बन्धों में शिथिलता उत्पन्न कर दी और आज मनुष्य को खोखलेपन और खालीपन का आभास होता है। आज सम्बन्धों की पहचान सिर्फ आर्थिक स्थितियों के अनुरूप हो गई। स्वाधीनता के बाद देश की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्थितियों में जो परिवर्तन आया, उसने भारतीय स्त्री को भी बन्द कमरों से निकालकर बाहरी दुनिया में अर्थोपार्जन के लिए स्थापित कर दिया। अब परिवर्तित समाज तथा अर्थ-व्यवस्था में परिवार का पोषण केवल एक व्यक्ति की आय से संभव नहीं है। इसीलिये मध्यमवर्गीय परिवारों में घर की स्त्रियों को भी कामकाज करके परिवार के लिये अतिरिक्त आमदनी इकट्ठा करनी पडती है।

आधुनिक समाजशास्त्र, मानवशास्त्र को आम तौर पर आर्थिक दृष्टिकोण से तीन विशाल वर्गो में विभक्त करता है - उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग। हर वर्ग

को दूसरे वर्गों से अलग करनेवाले पहलुओं की 'वर्गवत उपसभ्यता' (क्लास सब-कल्चर) कहते हैं।"[34] "पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रवृत्तियों वाले इन नवीन आर्थिक परिवर्तनों का परिणाम यह निकला कि सदियों पुरानी भारतीय सामाजिक व्यवस्था शिथिल होकर यहाँ आर्थिक आधार का नया सामाजिक स्तरीकरण प्रकट होने लगा। भारतीय समाज में एक प्रभावी तत्व के रूप में मध्यमवर्गीय समाज का आविर्भाव और उस वर्ग की अलग उपसभ्यता का विकास इस युग-सन्धि से प्रकट होने लगा था।"[35]

इस से यही निश्चित हुआ कि सदियों से चली आ रही भारतीय परम्परा टूटने लगी और जाति व्यवस्था में भी शिथिलता आने लगी। जाति-श्रेष्ठता से अधिक आर्थिक निर्भरता और शैक्षणिक योग्यता की गणना होने लगी थी। कुछ प्रांतीय भिन्नताओं के साथ देशभर में सदियों से कायम रही संयुक्त परिवार प्रणाली में भी इन आर्थिक परिवर्तनों से विघटन शुरू हुआ।

विद्वानों का कहना है - " 'नैतिकता' मनुष्य के आचरण का संचालन करनेवाली नियमावली होती है। नैतिकता मानव के व्यवहार को समाजोपयोगी तथा समाज के अनुकूल बनाती है। पूर्वकालीन नैतिक आचरण व्यक्ति और समाज दोनों के लिए समान होता था।"[36] नैतिक शब्द का अर्थ आचरण से सम्बन्धित है। नैतिक शब्द 'नीति' से बना है। समाज, धर्म और राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुकूल चलना ही नीति है और उन नियमों के अनुकूल आचरण से सम्बन्धित मूल्य ही नैतिक मूल्य हैं। दया, त्याग, पवित्रता, सत्य आदि शाश्वत मूल्यों को नैतिक मूल्य कहा जा सकता

है। सौन्दर्यमूल्य और नैतिक मूल्य एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं।"[37] भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति विशेष आदर रहा है। यही कारण है कि समाज और शासन के प्रति निष्ठावान रहने की परम्परा भारतीय जनता में विशेष रूप से विद्यमान रही है। हमारे यहाँ आचरण की पवित्रता को अधिक महत्व दिया गया है। जो बात एक देश में नैतिक मानी जाती है, वही दूसरे देश में अनैतिक भी हो सकती है। उन्मुक्त यौन-सम्बन्ध कई पाश्चात्य देशों में उतने वर्जित नहीं हैं, किन्तु भारतीय समाज में इन्हें आज भी वर्जित माना जाता है। इसी प्रकार विदेशों में विवाह विच्छेद जितना सरल और समाज सम्मत है, उतना भारत में नहीं।

नर-नारी सम्बन्धों और यौन नैतिकता के बारे में यही कहा जा सकता है कि आज पति-पत्नी के सम्बन्ध टूटते हुए नजर आते हैं। सतीत्व और पतिव्रता की परम्परागत धारणाएँ टूटती जा रही हैं। पाश्चात्य विचारकों ने भी इस बात को महत्व दिया है। डब्ल्यू. एच. कहते हैं - सेक्स और नैतिकता के बारे में कहा जाता है– "विवाह पूर्व काम-सम्बन्ध भी एक नैतिक समस्या उत्पन्न करते हैं। समाज का लगभग सम्पूर्ण वर्ग यौन सम्बन्धों को विवाही स्त्री-पुरूष तक ही सीमित रखने का समर्थक है और पवित्र जीवनयापन को ही अविवाहित वर्ग का सदाचरण मानता है।"[38] आज के साहित्य में अनैतिक यौन सम्बन्धों का व्यापक चित्रण हुआ है। दरअसल आज की अर्थ-केन्द्रित व्यवस्था में नैतिकता के मानदण्ड भी बदलते गये हैं। धर्म,अर्थ, काम, मोक्ष में काम का पलड़ा भारी हो गया है। वैयक्तिक स्वार्थ के लिये आज हर व्यक्ति नैतिक नियम को तोड़ने में पीछे नहीं हटता है। मध्यमवर्ग में भी आर्थिक दबाव के

कारण विवाहित और अविवाहित नारियों को अनैतिक यौन-सम्बन्ध रखने के लिए विवश होना पड़ता है। छठे दशक के बाद की कहानियों में इन स्थितियों की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय समाज परम्परागत नैतिक मान्यताओं को तिलांजलि देकर नवीन नैतिक मान्यताओं को अपना रहा है, जैसे अन्तर्जातीय विवाह को अपनाना, विधववा विवाह को आज उदात्त कर्म माना जा रहा है, बड़े भाई के देहान्त के बाद छोटे भाई का भाभी के साथ विवाह ऐसे ही कार्य हैं। हिन्दू समाज में बाल विवाह को भी कानून द्वारा रोक दिया है। आज की ज्यादातर कहानियों में नैतिकता के इन विभिन्न पक्षों का विवेचन हुआ है।

आज परम्परागत नैतिक मूल्य टूटते हुए दिखाई देते हैं। आज व्यक्ति हर बात पे झूठ का सहारा लेता है। नैतिकता का सर्वत्र पतन दिखाई देता है। महानगरों में त्याग, दया, प्रेम, सहानुभूति के दर्शन दुर्लभ हो गए हैं। बढ़ती हुई बेकारी की समस्या भी किसी हद तक नैतिक मूल्यों के विघटन के लिए जिम्मेदार है। 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' की उक्ति के अनुसार एक अभावग्रस्त व्यक्ति से सदैव नैतिक व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जा सकती। नैतिक मूल्यों के परिणामस्वरूप आज समाज में अनुशासनहीनता, भ्रष्टाचार, कामचोरी जैसी मूल्यहीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ है। सच्चाई, सहानुभूति, त्याग, अहिंसा, सहिष्णुता, पातिव्रत्य, दया, कर्तव्य तथा अनुशासन आदि सभी नैतिक मूल्यों का क्षय हुआ है। आज के कहानीकारों ने नैतिक मूल्यों के इस विघटन को तीव्रता से अनुभव किया है।

परिवार समाज का सबसे छोटा घटक है। स्वार्थ के त्याग का सिलसिला वस्तुतः परिवार से ही प्रारम्भ होता है। जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागकर अपने परिवार के प्रति समर्पित होता है, उसके लिए कष्ट उठाता है, और परिवार के अस्तित्व के लिए अपने निजी स्वार्थ का त्याग कर देता है, तो वह उसका नैतिकता की ओर पहला कदम होता है। परिवार नैतिकता की पाठशाला है।

****

संदर्भ-सूची

1. डॉ. डी. एन. मजुमदार, भारतीय संस्कृति के उपादान, पृ. 50 सोशियोलोजी

2 डॉ. गणेशदास, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप, पृ. 21

3. हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दु परिवार-मीमांसा, पृ. 1

4. डॉ. श्रीमती सुनिता श्रीमाल, मोहन राकेश का साहित्य परिवारिक सम्बन्धों के विघटन की स्थितियाँ, पृ. 131

5. श्री एस. आर. त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति और समाज, पृ. 75

6. श्यामाचरण दुबे, मानव और संस्कति, पृ. 99

7. ज्ञानवती अरोड़ा, समसामयिक युग में पारिवारिक सम्बन्धों में बदलाव, पृ. 78 से उद्धृत

8. ज्ञानवती अरोड़ा, समसामयिक युग में पारिवारिक सम्बन्धों में बदलाव, पृ. 80 से उद्धृत

9. Vimk off Ogburn, A Handbook of Sociology

10. Kingseley Davis, Human Society

11. C. C. Harris - The Family : An Introduction, Uni. College, London, George Allen Ltd.

12. केम्ले का कोशलजीन, ऐतिहासिक भौतिकवाद, पृ. 79, 81

13. बट्रेंव्ड रसेल, विवाह और नैतिकता (अनुवाद - धर्मपाल), पृ. 114

14. वेस्टन मार्क, विवाह और समाज (अनुवाद - शम्भूरत्न त्रिपाठी), पृ 25

15. आर. एम. मेकाइवर एण्ड सी.एच. पेज, सोसायटी, पृ. 238

16. जी के. अग्रवाल, सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन, पृ. 113

17. 'धनात् कुल प्रभवति' - महाभारत, शान्ति पर्व 8/22, पृ. 341

18. ज्ञानवती अरोडा, समसामयिक कहानी में बदलते पारिवारिक सम्बन्ध, पृ. 89

19. महाभारत से विदुर की वाणी - श्री मन्महर्षि वेदव्यास

20. Modern India & the West - O'Malley

21. हेमलता श्रीवास्तव, भारतीय समाज की संरचना / सोशियोलॉजी

22. हेमलता श्रीवास्तव, भारतीय समाज क़ी संरचना / सोशियोलॉजी

23. Havlock - An Introduction to Sociology

24. डॉ. प्रमिला कपूर - विवाह, सेक्स और प्रेम, पृ. 179

25. हेवलोक एलिस - यौन मनोविज्ञान (अनुवाद-मन्मनथनाथ गुप्त), पृ. 19

26. इण्ट्रोडक्टरी सोशियोलॉजी से

27. डॉ. श्रीमती सुनिता श्रीमाल, मोहन राकेश का साहित्य, पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन की स्थितियाँ, पृ. 26 से उद्धृत

28. Linton R.- The Study of Man

29. रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, भरत अग्रवाल - समाजशास्त्र के मूल तत्व, पृ. 156 से उद्धृत

30. ज्ञानवती अरोड़ा, समसामयिक हिन्दी कहानी पारिवारिक बदलाव, पृ. 98

31. Martyn New Mayor - Social Problems and Changing Society, D.V.N., New York.

32. Eliot and Merill - Social Disorganisation, H&R Publishers, New York.

33. डॉ. सरोजनी त्रिपाठी, आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास, पृ. 286

34. तोमर, गोयल, दर्शन, परिवार और समाज, पृ. 492

35. डॉ पी. एम. थोमस, भारतीय मध्यम वर्ग और सामाजिक उपन्यास, पृ. 33

36. डॉ. पी. एम. थोमस, भारतीय मध्यम वर्ग और सामाजिक उपन्यास, पृ 53

37. डॉ. अमर ज्योति, महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि, पृ. 38

38. डॉ रमेश देशमुख, आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, पृ. 176